जीवन में गुरु की महत्ता

मधुर व्याख्यानी श्री गौतममुनि जी महाराज

गुरु का शिष्य पर महान् उपकार होता है। उनके द्वारा प्रदत्त सद्बोध शिष्य के जीवन का निर्माण करता है। प्रज्ञाशील गुरु किस प्रकार अपने शिष्य का मार्गदर्शक बनता है तथा किस प्रकार उसे अहंकारादि विकारों से रहित बनाता है, इसका सुन्दर निरूपण श्री गौतममुनि जी महाराज द्वारा गोटन चातुर्मास में फरमाए गए प्रस्तुत प्रवचन में हुआ है। प्रवचन का संकलन एवं सम्पादन सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के कार्याध्यक्ष श्री सम्पतराज जी चौधरी ने किया है।-**सम्पादक**

धर्मप्रेमी बन्धुओं!

आपने एक बहुचर्चित दोहा सुना ही है जिसमें गुरु की महिमा बड़े सुन्दर रूप से प्रतिपादित हुई है-

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, का के लागूं पांव।
बलिहारी गुरुदेव की, गोविन्द दियो बताय।।

संसार के सभी धर्मों में व्यक्ति के जीवनोत्थान हेतु गुरु की भूमिका को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। जैन दर्शन में तीन तत्त्वों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। ये तीन तत्त्व हैं- देव, गुरु और धर्म। इनमें गुरु का स्थान मध्य में है। गुरु का लक्ष्य अरिहन्त बनने का रहता है। धर्म से वह स्वयं जुड़ा रहता है और दूसरों को भी जोड़ता है। जैन वाङ्मय में तो चौदह पूर्वों के अतिशय ज्ञानी गणधर भी भगवान महावीर को संबोधन करते हुए उनके बारे में कहते हैं- "मेरे धर्माचार्य धर्मगुरु भगवान महावीर!" गणधर जैसे शिष्यों ने तीर्थंकर भगवान में भी गुरु तत्त्व को प्राथमिकता दी है। उनका भी भगवान को प्रथम सम्बोधन गुरु के रूप में होता है और उसके बाद भगवान के रूप में। यही कारण है कि जैन परम्परा में गुरु को 'गुरुदेव' अथवा 'गुरु भगवन्त' के विशेषण से संबोधित किया जाता है। मेरे कहने का तात्पर्य है कि जैन धर्म में गुरु को जीवन में कल्याण पथ के अभिमुख करने वाले एक परम हितकारी के रूप में सर्वाधिक पूज्य माना गया है। गुरु को एक ऐसे माली की संज्ञा दी है जो हमारे जीवन-उपवन में दिव्य गुणों के पुष्प उगाकर उसे सौन्दर्य प्रदान कर सुवासित करता है। गुरु को एक कुम्भकार की उपमा भी दी गई है। जो हमारे मृण्मय जीवनघट को चिन्मयता के बोध से मंगलमय घट बना देता है। गुरु को एक कुशल नाविक कहा गया है जो हमारी जीवन-नौका को भवसागर से पार करा देता है। गुरु को एक शिल्पकार भी कहा है जो एक अनगढ जीवन को गढ़कर उसे एक सुन्दर प्रतिमा का रूप दे देता है। गुरु की एक वैद्य से तुलना की गई है, जिसमें वह अनन्त भवों से पीड़ित जीव को संजीवनी बूंटी देकर अमरत्व प्रदान करता है। अन्त में गुरु एक ऐसा प्रणेता है जो हमारे जीवन के कोरे पृष्ठों पर आनन्द की अमिट रेखाएँ उत्कीर्ण करता है।

बन्धुओं! वास्तव में तो 'गुरु' शब्द में ही गुरु का अर्थ अंतर्निहित है। गुरु वह है जो हमारे अंधकार को

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

दूरकर हमें प्रकाश की रश्मियाँ प्रदान करता है, अर्थात् हमारे अज्ञान और मिथ्यात्व रूपी अंधकार को दूर कर हमें ज्ञान का प्रकाश देकर आत्म-साक्षात्कार कराता है। आप देखते ही हैं कि आज अत्यधिक भौतिक प्रगति के बावजूद चारों ओर अशांति और संघर्ष के वातावरण में वृद्धि हो रही है। ज्यों-ज्यों व्यक्ति बाह्य सुखों की खोज में रात-दिन दौड़ा जा रहा है, त्यों-त्यों उसके मानसिक क्लेश बढ़ते ही जा रहे हैं। तनाव से मुक्ति नहीं मिल रही है। फलस्वरूप उसके जीवन में विषाद बढ़ जाता है और वह नैराश्य में डूबकर जीवन से पलायन का मार्ग ले लेता है। ऐसी मनःस्थिति में व्यक्ति कभी-कभी तो आत्महत्या का जघन्य कृत्य भी कर बैठता है। भौतिक संसाधनों की पूर्ति में आर्थिक प्रतिस्पर्धा अनेकानेक नई-नई समस्याओं को जन्म दे रही है। जीवन की इस दौड़-भाग में ऐसा लग रहा है कि जीवन का एक मात्र उद्देश्य अधिक से अधिक धन का अर्जन कर सुख के साधन जुटाना रह गया है। भोगवादी संस्कृति में ये क्षणिक सुख अनेक दुःखों का सृजन करके जीवन को नरक बना रहे हैं। ऐसा न हो जाय कि शांति, प्रेम, वात्सल्य, मैत्री आदि किताबों के शब्द ही रह जायें। इस समस्या का समाधान न तो आज का विज्ञान ही दे सका है और न ही धन-दौलत दे सकी है। इस विषम वातावरण में शान्ति प्राप्त करने का समाधान देकर सत्य का दर्शन केवल गुरु ही करा सकता है।

यदि इस जगत में आत्मबोध से युक्त गुरु नहीं होता, उसकी निष्काम साधना नहीं होती और ऐसे गुरु का हमें मार्गदर्शन नहीं मिलता, सान्निध्य नहीं मिलता, प्रेरणास्पद बोध नहीं मिलता तो आज संसार में जैसी भयावह स्थिति होती उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। गुरु एक वरदान है, जीवन में अमृत का पान है, जीवन का समाधान है और एक प्रकाश स्तम्भ है जो हर समय हमें दिशा बोध देता है। इसीलिये उनका महत्त्व है। इस दृष्टि से गुरु वह होता है जो विषय-कषायों और भोग से परे हो, इन्द्रियजयी हो, लक्ष्य के प्रति पूर्ण रूपेण समर्पित हो एवं आत्मबोध से परिपूर्ण होकर आत्म-साक्षात्कार के अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव कर रहा हो। ऐसा व्यक्ति केवल आत्म-कल्याण के मार्ग में निरन्तर गतिमान रहकर स्व के साथ पर-कल्याण में भी निस्पृह भाव से प्रवृत्त रहता है। वह आत्म-द्रष्टा और भविष्य-द्रष्टा होता है। ऐसे गुणों का धारी ही शिष्य के जीवन का निर्माण सम्यक् रूपेण कर सकता है। वह तो इतना निस्पृही होता है कि शिष्य को अपने समान ही नहीं, अपने से भी ऊँचा उठा देता है।

यह जिनशासन की महत्ता है कि इसमें ऐसे सद्गुरुओं की परम्परा आज भी अविच्छिन्न रूप से चल रही है। वे शिष्य की मनोभूमि को देखकर उसमें उचित संस्कारों के बीज बोते हैं, उसे वात्सल्य का नीर देते हैं, अंकुरित होने पर अपने आश्रय की सुखद छाया में विकसित होने का पूर्ण अवसर देते हैं ताकि उसमें शान्ति, समता, मैत्री और आनन्द के फल-फूल लग सकें और वह अपने दुर्लभ मानव जीवन का कल्याणकारी उपयोग कर अपनी मुक्ति की राह प्रशस्त कर सकें।

गुरु केवल शिष्य का निर्माण ही नहीं करता है, अपितु जब भी शिष्य जीवन में निराशा में डूब कर हतोत्साही हो जाता है, तब उसे अपनी प्रेरणा का प्रसाद देकर उसमें नवजीवन का संचार भी करता है। हमारे आगम ग्रन्थों में अनेक ऐसे दृष्टान्त मिलते हैं जिनमें मुनि यदि परीषहों को सहन करने में असमर्थता का अनुभव

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कर संयम धर्म से च्युत होने लगता है, तब गुरु उसे कुमार्ग से बचाकर पुनः मार्ग में स्थिर करता है। भगवान महावीर के समय में मुनि मेघकुमार का आख्यान आपने सुना होगा। मेघकुमार राजमहलों में पले एक राजकुमार थे। भगवान से प्रतिबोधित होकर उन्होंने मुनि जीवन अंगीकार कर लिया। मुनि बनने के पश्चात् प्रथम रात्रि में ही उन्होंने क्रम से अन्य मुनियों के साथ अपनी शय्या लगाई और सोने लगे। रात्रि के अन्धकार में अन्य मुनियों द्वारा कार्य हेतु आना-जाना होने पर उनको मुनि मेघ कुमार को लांघ कर जाना पड़ता था, जिससे उनके पैरों से मुनि मेघ को ठोकरें लगती रहती थीं। बार-बार यही होता देखकर मेघ मुनि सो न सके। वे विचार करने लगे कि जब मैं राजकुमार था तब ये ही मुनिगण मुझे मान-सम्मान देते थे और आज मेरी कोई परवाह न करते हुए मुझे ठोकरें लगाते हुए चल रहे हैं। वह रात, ऐसा विचारते-विचारते उसके लिये बड़े दुःख से बीती। उसने निश्चय कर लिया कि प्रातः होते ही वह भगवान से आज्ञा लेकर पुनः गृहस्थ जीवन में चला जायेगा। सवेरा होते ही वह भगवान् के पास पहुँचा और उनको वन्दन-नमन किया। भगवान् तो सर्वज्ञ थे। उन्होंने मेघ के बिना बोले ही उसके मन में चल रहे वैचारिक द्वन्द्व को उसे बता दिया। मेघ ने कहा कि यह सत्य है भगवन्!। तब भगवान ने उसे प्रतिबोध देते हुए कहा- "मेघ, रात्रि में केवल इतने से परीषह से घबरा कर तुम विचलित हो गये और इस उत्कृष्ट संयम को त्यागने का विचार कर बैठे। जरा अपने पूर्व भवों पर दृष्टिपात तो करो। अनन्त काल से तुम कितने भीषण नरक, निगोद आदि गतियों के दुःख को दीन बने झेल रहे थे। तुमने कितनी ही बार सर्दी, गर्मी आदि की पीड़ाएँ भोगी हैं। उनके सामने तो ये पीड़ाएँ नगण्य हैं, फिर भी तुम निराश हो गये? अब यह भव तुमको अनन्त पुण्यों के फलस्वरूप मिला है। मानव भव के अतिरिक्त अन्य किसी भव में अपने दुःखों का अन्त करना सम्भव नहीं होता है, उन्हें केवल भोगना ही होता है। मानव भव में ही तुम अपने पुरुषार्थ से दुःखों की परम्परा को सदैव के लिये नष्ट कर सकते हो। इस भव में भी समता धर्म को धारण कर अपना पुरुषार्थ प्रकट नहीं किया तो तुम्हारे दुःखों की यह परम्परा अनवरत चलती ही रहेगी। अतः संबोधि को प्राप्त कर, निर्मल संयम का पालन करके आत्म-कल्याण के मार्ग पर बढ़ोगे तो आनन्द का अखण्ड साम्राज्य तुम्हारा होगा। फिर न तो तुम्हारा जन्म होगा और न ही मरण। न तुम्हें सांसारिक सुख होगा और न ही दुःख। तुम उस शाश्वत धाम के वासी हो जाओगे जहाँ केवल आनन्द ही आनन्द होगा। मानवभव में आकर भी क्या तुम उसे प्राप्त करने का पुरुषार्थ नहीं करोगे?"

भगवान से अपने पूर्व भवों का वृत्तान्त सुनकर मेघ का रोम-रोम कांप उठा। उसकी चेतना जगी और वह आत्मभाव में आ गया। प्रभु से क्षमा मांगता हुआ वह तत्काल पुनः मुनि धर्म में स्थिर हो गया और भगवान् के चरणों में संकल्प किया कि "हे प्रभो! आज से इन दो आंखों के अतिरिक्त मेरा सम्पूर्ण शरीर संत-सेवा में समर्पित करता हूँ।" भगवान् ने एक गुरु के रूप में संयम से च्युत हो रहे शिष्य को पुनः कल्याण मार्ग का पथिक बना दिया। गुरु से उचित समय पर बोध पाकर मुनि मेघ का संघर्ष घुल गया और उन्हें जीवन का उत्कर्ष मिल गया। भगवान् के अन्तरमन में केवल शिष्य के हित की उद्भावना थी। वे तो वीतराग थे, अतः शिष्य के प्रति उनमें किंचित् भी राग नहीं था। उन्होंने मेघकुमार की परेशानी के निराकरण के लिये न तो उसे अपने पास शयन करने के लिये कहा और न ही अन्य मुनियों को उपालम्भ ही दिया कि उन्होंने एक राजघराने से आये मेघ मुनि का ध्यान भी नहीं रखा। भगवान् चाहते तो मेघ के लिये अनुकूल वातावरण बना सकते थे। उन्हें तो पता था कि उस

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुकूलता में मेघ को क्षणिक सुख भले ही मिल जाये, पर वे अन्त में उसके दुःख की परम्परा को बढ़ाने वाले ही होंगे। उन्होंने ऐसा कुछ भी न कर उसमें संयम का पुरुषार्थ जगाया। गुरु का बोध मिले, तब ही हमें पता चलेगा कि हम असमर्थताओं से नहीं अपितु संभावनों से भरे हैं। मेघकुमार का जीवन इसका एक सुन्दर उदाहरण है।

एक और उदाहरण आपने सुना होगा अरणक मुनि का। अरणक अपने माता-पिता के साथ ही दीक्षित हुआ था। अरणक को साधु चर्या में कोई कष्ट न हो इसलिये उसके पिता मुनि स्नेहवश उसके सारे कार्य कर देते थे। फलस्वरूप अरणक मुनि को संयम-पालन में परीषहों के सहन करने का कुछ भी अभ्यास नहीं हुआ। पिता मुनि के देहावसान पर जब अरणक को साध्वाचार के सारे कार्य स्वयं ही करने पड़े तो वह घबरा गया। उसमें निराशा व्याप्त होने लगी। निराशा में डूबा एक दिन वह भिक्षार्थ बाहर गया। रास्ते में भीषण गर्मी से घबराकर वह एक भव्य प्रासाद के तले उसकी छाया में खड़ा हो गया। उसी समय ऊपर खड़ी एक रमणी ने उसे देखा। सुन्दर और सुकोमल युवा मुनि को देखकर वह उस पर मोहित हो गई। उसने मुनि को ऊपर बुलाकर कहा- ''क्यों मुनि के कष्ट भोगकर जीवन को नष्ट कर रहे हो? तुम मेरे पास आ जाओ। हम यहाँ महलों में रहकर सुखों का उपभोग करते हुए अपने जीवन को सुखमय बना लेंगे।'' अरणक का मन तो परीषहों के कारण पहले से ही विचलित हो रहा था। उस रमणी के सुखद बोलों ने उसे भोगों की ओर आकर्षित कर दिया। वह महलों में रहकर रमणी के साथ भोग-विलास में लिप्त हो गया।

उधर जब अरणक दिखाई नहीं दिया तो उसकी साध्वी मां उसे ढूँढने निकल पड़ी। अरणक! अरणक! पुकारती हुई जब वह उस महल के पास से निकली तो अरणक ने मां की आवाज को पहचान लिया। नीचे देखा तो उसकी साध्वी मां खड़ी थी। वह तुरन्त नीचे आया और साध्वी मां को वंदन कर बोला- ''माँ मैं तेरा बेटा अरणक आ गया हूँ।'' साध्वी मां बोली- ''नहीं, तूँ मेरा बेटा नहीं हो सकता। मेरा बेटा तो अरणक मुनि था। मैं तो शेरनी हूँ और शेरनी का बेटा शेर ही हो सकता है। तूँ तो गीदड़ है जो संयम से भ्रष्ट हो गया। तूँ मेरा बेटा कैसे हो सकता है?'' अरणक ने कहा- ''मां, मैं मुनि-जीवन के परीषहों को कैसे सहन कर सकूँगा? मैं इनसे दुःखी होकर मर जाऊँगा।'' साध्वी मां ने कहा- तुमको संयम में मरना श्रेयस्कर है, पर असंयम तो किसी भी रूप में स्वीकार्य नहीं होना चाहिए। असंयम में रहने से तो पृथ्वी पर पड़ी इस तप्त शिला पर संलेखना करना अच्छा है।'' साध्वी मां की बात सुनकर अरणक का शौर्य जाग गया। उसने उस तप्त शिला पर संलेखना ले ली और असंयम में मरने से बच गया। साध्वी मां का उद्बोधन अरणक के लिये गुरु के रूप में उद्बोधन था जिसके कारण उसके लिये एक झुलसती शिला भी आत्मबोध होने पर शीतल लगने लगी।

बन्धुओं! कभी-कभी लोक प्रसिद्धि की कामना में अथवा अपनी विद्वत्ता के कारण साधकों में अहं भाव जाग जाता है। उस अहं में उनकी साधना गौण हो जाती है और वे अपना प्रभाव जमाने के लिये बाहरी प्रदर्शन और आडम्बर में लग जाते हैं। अपना प्रभाव बढ़ाने की लालसा में वे पर-भाव में आ जाते हैं और संयम जीवन से भ्रष्ट हो जाते हैं। ऐसे समय में भी एक मात्र गुरु ही उनके आन्तरिक अहं की आहट सुनकर उन्हें प्रतिबोधित करके उनके अहं का विगलन करते हैं और विनय धर्म की ओर मोड़ देते हैं। गुरु के उपालम्भ भरे

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

हितकारी वचनों की रगड़ से उन विद्वान् शिष्यों की अन्तश्चेतना में आत्मज्योति प्रज्वलित हो जाती है। उनकी विद्वत्ता सार्थक हो जाती है।

आप महा प्रभावकारी 'कल्याण मंदिर स्तोत्र' का पाठ करते होंगे। आपको पता होगा कि इस स्तोत्र की रचना करने वाले आचार्य सिद्धसेन दिवाकर एक महान् प्रतिभाशाली प्रज्ञावान आचार्य हुए हैं जिन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की, जिनमें कई आज भी उपलब्ध हैं। मुनि बनने के पूर्व वे अपनी प्रज्ञा और बुद्धिबल के समक्ष अन्य विद्वानों को तृणवत् समझते थे। उन्होंने अपने मन में एक संकल्प लिया कि जो मुझे शास्त्रार्थ में हरा देगा मैं उन्हीं का शिष्य बन जाऊँगा। वे एक बार, उस समय के महान् आचार्य वृद्धवादी के पास पहुँचे और बोले- "मैं आपसे शास्त्रार्थ करना चाहता हूँ।" आचार्य ने कहा- "ठीक है, पर जय-पराजय का निर्णय कौन करेगा?" सिद्धसेन अति विश्वास के साथ बोल पड़े कि इसका निर्णय ये आसपास में खड़े गोपाल ही कर देंगे। सिद्धसेन संस्कृत के उद्‌भट विद्वान थे, अतः उन्होंने संस्कृत में बड़ी सुन्दर लालित्यपूर्ण शैली में शास्त्रों का अर्थ प्रस्तुत किया। वहाँ खड़े गोप उनकी संस्कृत में प्रस्तुति को बिलकुल भी नहीं समझ सके और सुनकर चुप रहे। आचार्य वृद्धवादी ने समय और स्थिति को जानकर अपना पक्ष सीधी-सादी लोक प्रचलित भाषा में संगीत की लय के साथ प्रस्तुत किया जिसे सुनकर गोप वाह-वाह करने लगे। आचार्य की जीत हो गई। सिद्धसेन अपने मन के संकल्प के अनुसार वृद्धवादी के शिष्य बन गये।

शिष्य बनने के बाद भी सिद्धसेन की विद्वत्ता का अहं कम नहीं हुआ। वह राजा-महाराजाओं के यहाँ अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन कर अपना प्रभाव बढ़ाते रहे। राजाओं से उन्हें बड़ा सम्मान मिला। "प्रभुता पाई काहि मद नाही" की उक्ति के अनुसार वह मद में मस्त होकर राजा-महाराजाओं की तरह पालकी में बैठकर आने-जाने लगे। आचार्य वृद्धवादी को शिष्य के इन कृत्यों का पता चला तो उन्होंने उसे संयम-मार्ग में लाने की योजना बनाई। वे भेष बदलकर पालकी वाहक बनकर सिद्धसेन की पालकी उठाने वालों के साथ हो गये और सिद्धसेन की पालकी उठाने लग गये। वृद्ध व्यक्ति को पालकी उठाते देख सिद्धसेन ने उस वृद्ध से संस्कृत में पूछ लिया- "भूरिभारभराक्रान्तः बाधति स्कन्ध एष ते?" (अर्थात् पालकी के भार से आपके कन्धे तो नहीं दुःख रहे हैं?) सिद्धसेन के प्रश्न में व्याकरण की अशुद्धि थी। 'बाधति' की जगह 'बाधते' होना चाहिए था। पालकी वाहक के रूप में आचार्य को उन्हें प्रतिबोध देने का उचित अवसर मिला। वे बोले- तथा न बाधते स्कन्धः, यथा बाधति बाधते।" (अर्थात् पालकी से मेरे कन्धों को इतना भार रूपी दुःख नहीं लगता, जितना अशुद्ध संस्कृत से)। सिद्धसेन ने सोचा- "मेरी भूल बताने वाला यह कौन है?" उन्होंने पालकी वाले की तरफ ध्यान से देखा तो आचार्य को पहचान लिया। तत्क्षण उसका सारा अहं पिघल गया। वह पालकी से नीचे उतर कर गुरु चरणों में गिर पड़ा। उसका अहं गुरु के यथा समय दिये एक ही उपालम्भ से विनय और समर्पण में रूपान्तरित हो गया। वृद्धवादी गुरु के रूप में एक ऐसे कलाकार थे जिन्होंने शिष्य की विद्वत्ता की अंधेरी भित्ति पर ज्योति के अक्षर लिख दिये। शिष्य ने जब उन्हें पढ़ा तो अनेक महान् ग्रन्थों की रचना कर दी। पालकी वाहक के रूप में गुरु की पहचान उनके जीवन का निष्कर्ष हो गया। अगर गुरु का बोध नहीं मिलता तो सम्भवतः जिनशासन में वे इतने प्रभावक आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हो पाते।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

बन्धुओं! मैं आज के उन तथाकथित गुरुओं की बात नहीं कर रहा हूँ जो लोकैषणा के प्रवाह में बहकर अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिये शिष्यों की फौज खड़ी कर उनका उपयोग करते हैं। ऐसे गुरु स्वयं तो पतित हो ही रहे हैं, अपने शिष्यों को भी पतन के गहरे गर्त में धकेल रहे हैं। जहाँ निज का स्वार्थ हो, वहाँ शिष्यों का हित संपादन कैसे हो सकता है? किसी ने कहा है–

गुरु लोभी चेलो लालची, दोनों खेले दांव।
दोनूं डूबा बापड़ा, बैठ पत्थर की नांव।।

जहाँ स्वार्थ टकरायेगें वहाँ डूबने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। मैंने अभी आपके समक्ष आगम ग्रन्थों में आये कुछ ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किये हैं जिनमें गुरु ने निःस्पृह भाव से मार्ग से भटकने वाले शिष्य को पुनः मार्ग में लाकर उसके कल्याण का पथ प्रशस्त किया। आगम में ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जो शिष्य के जीवन में गुरु की महत्त्वपूर्ण भूमिका को प्रस्तुत करते हैं। मुनि जीवन में तो अनेक परीषह आते ही हैं, परन्तु यदि एक सद्गुरु का सान्निध्य मिल जाये तो एक शिष्य निर्भय होकर संयम पथ पर बढ़कर साध्य को पाने में सफल हो जाता है। जिनशासन की यह विशेषता है कि आज भी हमें ऐसे सद्गुरु मिल रहे हैं जो उत्कृष्ट संयम का पालन करते हुए अपने शिष्यों में भी वैसे ही संस्कार भर रहे हैं। आचार्य हस्ती एक ऐसे ही गुरु थे जिनका जीवन अप्रमत्तता और संयम से आपूरित था। वे एक विशिष्ट प्रज्ञा के धनी थे। उन्होंने अपने शिष्यों में उत्तम संयम के संस्कार भरे, जिससे वे आज भी उनके बताये मार्ग पर निर्भय होकर निरन्तर गतिमान हो रहे हैं।

बन्धुओं! हर बीज में एक विशाल वृक्ष बनने की सम्भावना है। पर वह फलित तभी होता है जब उसे उचित भूमि और पानी के साथ एक अच्छे माली का सहकार मिले। पत्थर में एक मूर्ति छिपी है, पर वह प्रकट तभी होती है जब वह पत्थर एक कलाकार के हाथ में जाता है। इसी तरह हर आत्मा में परमात्मा बनने की सामर्थ्य है, पर वह आत्मा परमात्मा तभी बन सकती है जब सद्गुरु का सान्निध्य मिल जाये। एक विद्यार्थी यदि परीक्षा में असफल होता है तो उसका एक वर्ष व्यर्थ ही चला जाता है। पत्नी यदि कर्कशा और दुर्गुणों से भरी मिल जाती है तो एक जीवन ही व्यर्थ चला जाता है। परन्तु एक उत्तम गुरु नहीं मिले तो भव-भव व्यर्थ में चले जाते हैं। अतः गुरु कैसा होना चाहिए, इसका दिग्दर्शन इस गीत में कराया गया है–

जिनके अन्तःस्थल में बहती करुणा रस की धारा,
वो है गुरुदेव हमारा।
जहाँ रोम-रोम में जिन आज्ञा का पावन पवित्र नजारा,
वो है गुरुदेव हमारा।
जो त्रस-स्थावर की करे न हिंसा, सत्य भी कडुवा टाले,
नहीं ले तृण भी बिन आज्ञा के, नव बाड़ शील शुद्ध पाले,
छोड़ा घरबार परिग्रह निज का, शुद्ध स्वरूप निहारा,
वो है गुरुदेव हमारा।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org